ईर्या एवं भाषा समिति

श्री त्रिलोकचन्द जैन

श्रमणाचार में पाँच समितियों एवं तीन गुप्तियों का विशेष महत्त्व है। असंयम से निवृत्ति हेतु गुप्ति एवं संयम में प्रवृत्ति हेतु समिति का पालन आवश्यक है। प्रस्तुत आलेख में पाँच समितियों में से प्रथम दो ईर्या एवं भाषा समिति का आगमों के आधार पर सांगोपांग विवेचन करते हुए साधु-साध्वी के आचार से अवगत कराया गया है। ईर्या समिति जहाँ यतना से गमनागमन का विधान करती है वहाँ भाषा समिति विवेकपूर्वक वचन प्रयोग पर बल प्रदान करती है। **-सम्पादक**

भारतीय संस्कृति को जीवन्त रखने में श्रमणों का आधारभूत स्थान रहा हुआ है। श्रमणों ने अध्यात्म मार्ग को अपनाते हुए तन की अपेक्षा चेतन को स्वभाव में लाने पर बल दिया। अतीत का पारायण करने पर ज्ञात होता है कि श्रमणों ने संयम-साधना, तप आराधना के माध्यम से स्व-जीवन को पवित्र बनाया और सानिध्य प्राप्त करने वाले अज्ञों को भी विज्ञ बनाया और उनका जीवन भी साधना से महकाया।

श्रमण जीवन अर्थात् पाप विरति जीवन है। श्रमण को बाह्य रूप से सावद्य (पाप) क्रियाओं से बचना तथा आभ्यन्तर रूप से क्रोध, मान, माया, लोभ की वृत्ति से हटना होता है। साधु को अध्यात्म जीवन के उत्कर्ष हेतु निरन्तर गतिशीलता रखते हुए व्रत, नियम आदि के सम्यक् पालन और मर्यादा से अपने चारित्र को संवारना होता है। श्रमण-दीक्षा ग्रहण करते समय पाँच प्रतिज्ञाओं के रूप में पाँच महाव्रतों को ग्रहण करना और उन्हें जीवन पर्यन्त प्राणपण से पालना श्रमण का उत्कृष्ट कर्त्तव्य होता है। साथ ही 5 समिति 3 गुप्ति रूप अष्ट प्रवचन माता श्रमण के अहिंसा आदि पाँच महाव्रतों की सुरक्षा एवं विशुद्धता के लिए माता के समान परिपालना देखभाल करती है। जिस प्रकार माता की भावना पुत्र को सन्मार्ग पर चलाने की होती है तथा वह पुत्र के संरक्षण और विकास के लिए सतत प्रयासरत रहती है उसी प्रकार श्रमण के लिए 5 समिति और 3 गुप्तियों को उत्तराध्ययन सूत्र में प्रवचन माता के विरुद से अभिहित किया गया है।

अट्ठ पवयण मायाओ, समिई गुत्ती तहेव य।
पंचेव य समिईओ, तओ गुत्तीओ आहिया।।

–उत्तराध्ययन सूत्र 24.1

अर्थात्–समिति और गुप्ति मिलकर आठ प्रवचन माताएँ हैं। समितियाँ पाँच और गुप्तियाँ तीन हैं।

श्रमण धर्म निवृत्ति परक है, लेकिन संयम-जीवन के संचालन हेतु नित्य आवश्यक कर्मों में प्रवृत्ति का

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आधार भी आवश्यक होता है। क्योंकि साधु को चलना, बोलना, आहार लेना, उपकरण आदि रखना और मलमूत्र त्याग आदि आवश्यक क्रियाएँ करनी ही पड़ती हैं। अत: इन क्रियाओं को संयम पूर्वक करना समिति है।

पाँच समितियों का विधान आगमों में अनेक स्थलों पर किया गया है।

इरिया भासेसणादाणे, उच्चारे समिई इय। –उत्तराध्ययन सूत्र 24.2

अट्ठ पवयण मायाओ पण्णत्ताओ तं जहा–ईरिया समिई, भाषा समिई, एसणासमिई, आयाणभंडमत्त णिक्खेवणासमिई, उच्चारपासवण–खेल–जल्ल–सिंघाण–परिट्ठावणिया समिई, मण गुत्ती वय गुत्ती काय गुत्ती।–समवायांग सूत्र

पंच समितीओ पण्णत्ताओ तं जहा–इरिया समिती, भासा समिती, एसणा समिती, आयाण भंड–मत्त णिक्खेवणा समिती, उच्चारपासवण–खेल–सिंघाण–जल्ल'परिठावणिया समिती।–ठाणांग सूत्र ठाणा-5

आवश्यक सूत्र में भी पाँच समितिओं में लगे दोषों का प्रतिक्रमण किया गया है।

उक्त पाँच समितियों से योग्य, शुभतर एवं विशुद्ध प्रवृत्तियों में प्रवृत्ति तो होती ही है, अशुभ से निवृत्ति भी होती है। साधक विवेकपूर्वक गमनागमन की क्रिया करे, हित-मित और संयमित भाषा का प्रयोग भी विवेक पूर्वक करे, गवेषणा पूर्वक आहार आदि को ग्रहण करे, उपकरणों का उपभोग भी सजगता से ममत्व भाव रहित होकर करे और मल-मूत्र त्याग भी उचित स्थान पर यतना पूर्वक करे। इस प्रकार साधक को प्रवृत्ति की सजगतापूर्वक पूर्णता करने को कहा गया है। गमनागमन में किस प्रकार साधक की विवेक पूर्वक प्रवृत्ति हो, इसके लिए ईर्या समिति का विधान किया है।

1. ईया समिति

योग्य मार्ग से, युग प्रमाण (4 हाथ) आगे की भूमि को आँखों से देखते हुए प्राणि-विराधना से बचते हुए संयमित गमनागमन करना ईर्या समिति है।

भगवती आराधना के अनुसार मार्ग शुद्धि, उद्योत शुद्धि, उपयोग शुद्धि एवं आलम्बन शुद्धि–इन चार शुद्धियों के आधार पूर्वक गमनागमन रूप प्रवृत्ति को ईर्या समिति कहा है। यहाँ मार्गशुद्धि से अभिप्राय सूक्ष्म प्राणिरहित प्रासुक मार्ग है, उद्योत शुद्धि से आशय सूर्य का प्रकाश है, उपयोग शुद्धि से अभिप्राय इन्द्रिय विषयों की चेष्टा रहित तथा ज्ञान दर्शन उपयोग सहित है और आलम्बन-शुद्धि से तात्पर्य देव-गुरु आदि हैं।

दशवैकालिक चूर्णि में कहा है–गमनागमन के समय दृष्टि को अधिक दूर डालने से सूक्ष्म प्राणी दिखाई नहीं देते और अधिक पास दृष्टि रखने से एकाएक पैर के नीचे आने वाले प्राणियों को नहीं रोका जा सकता है। इसलिए युग प्रमाण अर्थात् न अतिदूर, न अतिपास भूमि देखकर चलने का विधान किया गया है।

आलम्बणेण कालेण मग्गेण, जयणाइ य।
चउकारण–परिसुद्धं, संजए इरियं रिए।।–उत्तराध्ययन सूत्र 24.4

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् संयमी-साधक आलम्बन, काल, मार्ग और यतना, इन चार कारणों से परिशुद्ध ईर्या से गमनागमन करे। साधक की प्रत्येक शारीरिक क्रिया जैसे–चलना, फिरना, उठना, बैठना आदि गति सम्बन्धी समस्त क्रियाओं का समावेश ईर्या में हो जाता है। ईर्या की शुद्धि ही ईर्या समिति का पालन है। ईर्या समिति के पालन में चार कारण अनिवार्य हैं–

1. **आलम्बन–** ज्ञान, दर्शन और चारित्र के आलम्बन से ईर्या का पालन करना होता है। निरालम्बन ईर्या से संयम की विराधना हो सकती है। उक्त तीन आलम्बन से गमनादि करना ही ईर्या की शुद्धता है।
2. **काल–** साधक के लिए रात्रि में प्रकाश का अभाव होने से ईर्या नहीं करने का विधान है। चक्षुओं से वस्तुओं का ग्रहण दिन में ही होना सम्भव है इसलिए दिन का काल ही उचित है।
3. **मार्ग–** कुपथ का त्याग कर सत्पथ पर चलना चाहिए। वनस्पति, सचित्त पृथ्वी आदि से युक्त मार्ग पर गमनागमन से संयम-विराधना सम्भव है।
4. **यतना–** द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से यतना का विचार करते हैं। द्रव्य से उपयोग पूर्वक जीव-अजीव द्रव्यों को भली-भाँति देखकर, क्षेत्र से युग प्रमाण (4 हाथ) आगे की भूमि देखकर, काल से-दिन में, वह भी यतना पूर्वक तथा भाव से सजगता पूर्वक गमन करना।

ईर्या समिति का पालन करते साधक को पाँच इन्द्रियों के विषयों तथा वाचना आदि पाँच प्रकार के स्वाध्याय का भी वर्जन विधान है। गमनागमन करते समय तन्मयता से उसी ईर्या को प्रमुखता देते हुए ईर्या की क्रिया करनी चाहिये। इस भाव को उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है–

इंदियत्थे विवज्जित्ता, सज्झायं चेव पंचहा।
तम्मुत्ती तप्पुरक्कारे, उवउत्ते इरियं रिए॥

इसी प्रकार आचारांग सूत्र द्वितीय श्रुतस्कन्ध के तृतीय अध्ययन के दूसरे उद्देशक में कहा है–

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गामाणुगामं दूइज्जमाणे णो परेहिं सद्धिं परिजविय गामाणुगामं दूइज्जेज्जा। ततो संजयामेव गामाणुगामं दूइज्जेज्जा।

अर्थात्–साधु अथवा साध्वी को ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए गृहस्थों के साथ अधिक वार्तालाप करते नहीं चलना चाहिए। किन्तु ईर्या समिति का पालन करते हुए यथाविधि विहार करना चाहिये।

दशवैकालिक सूत्र के पाँचवें अध्ययन की 7वीं गाथा भी ईर्या समिति के पालन का सन्देश देती है–

तहेवुच्चावया पाणा, भत्तट्ठाए समागया।
तउज्जुयं न गच्छेज्जा, जयमेव परक्कमे॥

अर्थात्–भिक्षा के लिए गमनागमन करते समय यदि रास्ते में भोजनार्थ एकत्रित हुए नाना प्रकार के प्राणी दिखाई दें तो वह साधक उनके पास नहीं जाए, किन्तु यतना पूर्वक वहाँ से अलग गमन करे ताकि उन प्राणियों को किसी भी प्रकार का कष्ट सेवन न हो। दशवैकालिक के ही चौथे अध्ययन में भी 'जयं चरे' के

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

माध्यम से साधक को यतना से चलने के रूप में ईर्या समिति के पालन का निर्देश किया है।

जैन सिद्धान्तों का प्राण अहिंसा है और अहिंसा को जीवन्त रखने में साधक की सजगता अनिवार्य है। अहिंसा के पूर्णत: पालन हेतु रुचि, जिज्ञासा, श्रद्धा,उत्साह, धृति, प्रेरणा, दृढता और तीव्रता की जननी के सदृश पाँच भावनाओं की साधना जीवन में आवश्यक है। उनमें भी प्रधान रूप से ईर्या समिति को प्रथम स्थान देते हुए कहा है–

पाणाइवायवेरमण-परिरक्खणट्ठाए पढमं ठाणगमण-गुण-जोगजुंजण-जुगंत-रणिवाइयाए दिट्ठिए ईरियव्वं। कीडपयंग-तस-थावर-दयावरेण णिच्चं सव्व पाणा ण हीलियव्वा, ण निंदियव्वा, ण गरिहियव्वा, ण हिंसीयव्वा, णं छिंदियव्वा, ण भिंदियव्वा, ण वहेयव्वा किंचि भयं य दुक्खं ण लब्भा पावेउं एवं ईरियासमिइजोगेण अंतरप्पा भाविओ भवइ।

–प्रश्नव्याकरण, द्वितीय श्रुत स्कन्ध, प्रथम अध्ययन

अर्थात्–प्राणातिपात विरमण रूप प्रथम महाव्रत की रक्षा के लिए और स्व-पर गुण-वृद्धि के लिए साधु चलने और ठहरने में युगप्रमाण भूमि पर दृष्टि रखता हुआ ईर्या समिति पूर्वक चले। जिससे उसके पाँव के नीचे दबकर कीट, पतंगादि त्रस और स्थावर जीवों का घात न हो जाए। ईर्या समिति से चर्या करने वाला किसी भी प्राणी की न अवहेलना करता है, न निन्दा करता है, न बुराई करता है, न हिंसा करता है, न छेदन करता है, न भेदन करता है, न ही वध करता है। और किसी भी प्राणी को किंचित् मात्र भी भय और दु:ख नहीं देता है। इस प्रकार ईर्या समिति में त्रियोग की प्रवृत्ति से जो अन्तरात्मा भावित होती है वह अक्षत चारित्र की भावना से ओतप्रोत होती है। अत: कहा जा सकता है कि यह भावना अहिंसा के साधक की रक्षा हेतु बाड़ के समान है। जैसे बाड़ से अनाज के लहलहाते खेत की रक्षा हो जाती है, वैसे ही ईर्या समिति भावना रूपी बाड़ से अहिंसा व्रत की रक्षा हो जाती है। ईर्या समिति के रक्षणार्थ साधक काल से दिन को ही गमन करे, इस सिद्धान्त के पोषणार्थ कहा गया है–

नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीणं वा राओ वा वियाले वा अद्धाणगमणं एत्तए।

–बृहत्कल्प सूत्र

अर्थात्–रात्रि या सन्ध्याकाल में साधु और साध्वियों को विहार करने का सर्वथा निषेध किया गया है। क्योंकि उस समय गमन करने पर मार्ग में चलने वाले जीव दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। अत: ईर्या समिति का पालन नहीं होता और संयम की विराधना होती है।

इस प्रकार आत्मा के उत्कृष्ट अध्यवसाय में रमण करने वाला साधक ईर्या समिति का सर्वकाल, सर्वदेश में सर्वतोभावेन सजगता एवं समर्पणता के साथ पालन करता है। साधक के लिए ईर्या समिति अमूल्य रत्न के समान है, क्योंकि इस रत्न के नहीं होने पर निश्चय साधना पक्ष तो धूमिल होता ही है व्यवहार साधना पक्ष भी मटिया मेट हो जाता है। इस प्रकार ईर्या समिति का पालक साधक उत्कृष्टता की ओर अग्रसित होता हुआ सिद्धि को प्राप्त होता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

2. भाषा समिति– हित, मित, सत्य और सन्देह रहित बोलना, सावधानी पूर्वक भाषण-सम्भाषण करना भाषा समिति है। भाषा का महत्त्व जग जाहिर है। भाषा व्यक्ति के व्यक्तित्व की परिचायक होती है। मधुर, आकर्षक, प्रिय भाषा व्यवहार में लोकप्रिय बनाती है। उसी प्रकार रागद्वेष रहित भाषा निश्चय में आत्मा को पवित्र करने वाली होती है। मौन ही मुनि शब्द का अर्थ प्रकट करता है। अर्थात् मौन से ही मुनि होता है। लेकिन संयम-जीवन के निर्वाहार्थ साधक को कदाचित् वचन योग का आलम्बन लेना पड़ता है। उस समय सम्यक् प्रकार से किया गया भाषा का प्रयोग भाषा समिति कहलाता है। उत्तराध्ययन सूत्र के 24वें अध्ययन की 9-10वीं गाथा भाषा समिति के स्वरूप का प्रतिपादन करती है।

कोहे माणे य मायाए, लोभे य उवउत्तया।
हासे भए मोहरिए, विगहासु तहेव य॥
एयाइं अट्ठ ठाणाइं, परिवज्जित्तु संजए।
असावज्जं मियं काले, भासयासेज्ज पन्नवं॥

अर्थात्–साधक क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, भय, मौखर्य और विकथाओं के प्रति सतत उपयोग युक्त होकर रहे। प्रज्ञा सम्पन्न साधन उक्त आठ प्रकारों को त्यागकर उचित समय पर निरवद्य एवं परिमित भाषा का उपयोग करे। तात्पर्य यह है कि कदाचित् क्रोध, मान आदि के कारण असत्य की सम्भावना हो जाए तो विवेकशील साधक उस पर विचार करके उससे बचने का प्रयास करे, क्योंकि विवेक रहित अवस्था में ही प्राय: असत्य का प्रयोग होता है। अत: भाषा समिति के संरक्षणार्थ निर्दोष एवं समयानुकूल भाषा का ही प्रयोग करे।

अत: द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से वाक् प्रयोग होना चाहिये। **द्रव्य से**-सत्य भाषा और व्यवहार भाषा का ही उपयोग करे। कर्कश, कठोर आदि सावद्य भाषा का प्रयोग नहीं करे।

क्षेत्र से-मार्ग में चलते हुए वार्ता नहीं करे।

काल से-रात्रि काल में प्रथम प्रहर के बीत जाने पर ऊँचे स्वर में न बोले, सूर्योदय तक।

भाव से-किसी को कष्ट न हो ऐसी भाषा का उपयोग सहित प्रयोग करे।

भाषा विवेक को आगम के अनेक स्थलों पर बताते हुए भाषा का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। आचार के प्रतिपादक आगम आचारांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध के चौथे अध्ययन के प्रथम उद्देशक में कहा है-

अणुवीयी णिट्ठाभासी समिताए संजते भासं भासेज्जा।

अर्थात्–संयमी साधु या साध्वी विचारपूर्वक भाषा समिति से युक्त निश्चितभाषी एवं संयत होकर भाषा का प्रयोग करे। आचारांग सूत्र के भाषाजात अध्ययन में साधु-साध्वी की प्रत्येक क्रियान्विति में भाषा के प्रयोग का वर्णन किया गया है। साधकों को किस प्रकार की भाषा का प्रयोग करना है तथा कौनसी भाषा का प्रयोग नहीं करना है, इस पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए भाषा के विवेक को प्रकाशित किया गया है। अन्त में इसे आचार की पवित्रता की द्योतक बताते हुए कहा है–

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

एयं खलु तस्स भिक्खुस्स वा भिक्खुणीय वा सामग्गियं जं सव्वट्ठेहिं सहितेहिं सदा जएज्जासि त्ति बेमि।

अर्थात्–भाषा के प्रयोग का विवेक ही वास्तव में साधु-साध्वी के आचार का सामर्थ्य है, जिसमें वह सभी ज्ञानादि अर्थों से युक्त होकर सदा प्रयत्नशील रहे।

सूत्रकृतांग सूत्र के नवें अध्ययन में भी साधु के भाषा विवेक के सम्बन्ध में कहा है–

भासमाणो न भासेज्जा, णेय वंफेज्ज मम्मयं।
मातिट्ठाणं विवज्जेज्जा, अणुविचिं वियागरे।।

अर्थात्–रत्नाधिक साधु किसी से वार्त्ता कर रहे हों तो, उस समय अपना पाण्डित्य प्रदर्शन करने या बड़े की लघुता प्रकट करने की दृष्टि से बीच में न बोले। भाषा समिति से युक्त साधु धर्मोपदेश का भाषण करता हुआ भी भाषण न करने वाले मौनी के समान है। साधु मर्मस्पर्शी एवं कपट प्रधान भाषा का त्याग करता है। वह साधु भाषा समिति सहित भी अभाषक ही होता है। अत: वह जब बोलना चाहे तब वह पूर्व पश्चात् का चिन्तन कर, ज्ञान करके बोलता है।

साधक के इसी सिद्धान्त का समर्थन करते हुए दशवैकालिक निर्युक्ति में भी लिखा है–

वयण विभत्ति कुसलो, वयोगतं बहुविधं वियाणेंतो।
दिवसं पि जंपमाणो, सो वि हु वइगुत्तत्तं पत्तो।।

अर्थात्–जो साधक भाषाविज्ञ है, वचन और विभक्ति को जानता है तथा अन्यान्य नियमों का ज्ञाता है, वह सारे दिन बोलता हुआ भी वचन गुप्त है।

प्रज्ञापना सूत्र के 11वें भाषापद में साधक के भाषा प्रयोग के सम्बन्ध में कहा है–

गोयमा! इच्चेयाइं चत्तारि भासज्जायाइं आउत्तं भासमाणे आराहए, णो विराहए।

अर्थात्–साधक सत्य, असत्य, मिश्र और व्यवहार भाषाओं को सम्यक् प्रकार से उपयोग रखकर, संघ पर आयी मलिनता की रक्षार्थ तत्पर होकर बोलता है तो वह आराधक होता है, विराधक नहीं।

प्रश्नव्याकरणसूत्र के द्वितीय श्रुत स्कन्ध में भी स्पष्ट कहा है–

तइयं च वइए पावियाए पावगं ण किंचि वि भासियव्वं एवं वयसमिइजोगेण भाविओ भवइ अंतरप्पा असबलम-संकिलिट्ठणिव्वणचरित्तभावणाए अहिंसए संजए सुसाहू।

अर्थात्–अहिंसा महाव्रत की तीसरी भावना के रूप में साधक को किंचित् भी पापकारी, आरम्भकारी वचन नहीं बोलना चाहिये। भाषा समिति पूर्वक वाक् व्यापार से आत्मा की निर्मलता बढती है। उसका चारित्र एवं भाव विशुद्ध एवं परिपूर्ण होता है और उसकी साधुता प्रशंसनीय होती है।

भाषा के विशुद्ध प्रयोग के कारण जीव अपने आत्म-परिणामों को निर्मल से निर्मलतम बनाता हुआ अपने परम व चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। दशवैकालिक सूत्र के वाक्य शुद्धि नामक अध्ययन में कहा है-

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

परिक्ख भासी सुसमाहि इंदिय, चउक्कसायावग्गए अणिस्सिए।
स निद्धुणे धुण्णमलं पुरेकडं, आराहए लोगमिणं तहा परं।।

अर्थात्–जो साधु इन्द्रियों के उपयोग में सुसमाधि से युक्त है; कषायों से रहित है, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के बन्धन से मुक्त है; वही साधक वचन के गुणदोषों को परख कर बोल पाता है। वह साधना के प्रभाव से पूर्वकृत पापकर्म को नष्ट कर डालता है। अपने सुन्दर भाषा प्रयोग एवं व्यवहार से लोक में मान्य बनता है तथा परलोक में उत्तम देवलोक या सिद्ध गति को प्राप्त कर लेता है। जो कि साधक की सर्वोत्तम उपलब्धि है।

श्रमण साधना की श्रेष्ठ भूमि पर अवस्थित होता है, अत: वह स्व कथ्य पर पूर्ण नियन्त्रण और सजगता रखता है। श्रमण भाषा में सावद्यता एवं निरवद्यता का विचार हर क्षण करके ही बोलता है। निर्युक्तिकार भद्रबाहु ने भाषा समिति से सम्पन्न विवेकशील साधु को मौनी अर्थात् मुनि कहा है। आचार्य मनु ने साधक को सत्य ही बोलने को कहा है। महाभारत के शान्तिपर्व में भी वचन विवेक पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

उपसंहार–अस्तु आचार के सजग प्रहरी साधक आत्माओं को प्रबल वेग का अनुसरण करती भौतिकता की चकाचौंधती आँधी से अप्रभावित हो सहजता से संयमी-मर्यादाओं का पालन करना चाहिए। ईर्या समिति और भाषा समिति के लिए साधक को 'जयं चरे, जयं भासे' का सिद्धान्त अपनाकर अपना जीवन आत्म-कल्याणार्थ समर्पित कर सिद्धत्व को प्राप्त करना चाहिए। हम वर्तमान और अतीत का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि अतीत में साधक का आचार नियत और विहार अनियत था। लेकिन आज शिथिलता के पोषकों ने विपरीतता को प्रस्रवित कर दिया और आज आचार अनियत और विहार नियत होता जा रहा है। लेकिन उक्त आगम-वाक्यों के अवलोकन से निश्चित ही हमें ज्ञात होता है कि हम आचार के उत्कृष्ट पालक बनकर ही श्रेष्ठत्व एवं निजत्व को प्राप्त कर सकते हैं। ईर्या समिति, भाषा समिति के पालक का लक्ष्य यही हो कि ''वह दिन धन्य होगा जब मैं ईर्या का अन्त कर अचल पद को प्राप्त करूँगा तथा वह दिन धन्य होगा जब मैं वचन वर्गणा के पुद्गलों से अनाश्रित रह वचन योग का अन्त करके अभाषक बनूँगा और अशरीरी होकर आत्म प्रदेशों के अखण्डित स्वरूप में रमण कर अनन्त सुख को प्राप्त करूँगा।''

अत: असम्यक् आचरण से निवृत्त हो समितियों का सम्यक् आचरण होगा तो आत्मा उज्ज्वलता की ओर अग्रसर होगी और सिद्धत्व को प्राप्त कर एक प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करेगी।

- 37/67, रजत पथ, मानसरोवर, जयपुर-302020 (राजस्थान)

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org